**ओ३म्**

**“आत्म ज्ञान से हीन मनुष्य इन्द्रियों के विषयों में फंसा रहता है”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

बुद्धिपूर्वक अर्थात् ज्ञानपूर्वक कर्म करने वाले प्राणियों को मनुष्य कहते हैं। मनुष्य की पहचान उसके पास बुद्धि अर्थात् सत्य व असत्य अथवा उचित व अनुचित का बोध कराने वाली शक्ति होती है। हमारी यह बुद्धि भी ज्ञान व अज्ञान से युक्त हुआ करती है। अज्ञान इसमें स्वतः होता है और ज्ञान से युक्त करने के लिए इसे माता-पिता व आचार्यों की शिक्षा की आवश्यकता होती है। माता-पिता व आचार्यों में जो ज्ञान व क्षमता होती है उसी के अनुरूप ही सन्तान वा शिष्य की बुद्धि की उन्नति हो सकती है। बहुत से लोग सत्य व असत्य के स्वरूप को यथार्थ रूप में जानने वाले आचार्यों के सान्निध्य को प्राप्त नहीं हो पाते जिससे उनकी बुद्धि का यथार्थ विकास नहीं हो पाता। आजकल की शिक्षा की बात करें तो इसमें मनुष्य को अक्षर ज्ञान सहित व्याकरण एवं अनेकानेक विषयों का ज्ञान कराया जाता है। कला, विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, गणित, सामाजिक ज्ञान, राजनीतिक ज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि अनेकानेक विषय होते हैं जिनका अध्ययन किया व कराया जाता है। इन सभी विषयों में आचार्य व अध्यापक को यह पता ही नहीं होता। विद्यार्थियों को विद्यालय में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में भी ईश्वर, जीवात्मा, मनुष्य जीवन, मनुष्य के कर्तव्य, जीवन का उद्देश्य, शुभकर्म-अशुभकर्म-अकर्म-दुष्कर्म आदि क्या हैं, इनका ज्ञान सम्मिलित नहीं होता है। इन आवश्यक विषयों का ज्ञान न कराये जाने से मनुष्य का सन्तुलित विकास नहीं हो पाता। उसका ज्ञान एकांगी होता है और उसी को वह पूर्ण ज्ञान मान लेता है जिससे उसके जीवन में अनेक अनर्थ होते हैं।

विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों से उसे ईश्वर, आत्मा, समाज व देश, माता-पिता-आचार्य व पर्यावरण के प्रति आज के शिक्षित व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का भली प्रकार से ज्ञान नहीं होता। ईश्वर और जीवात्मा का ज्ञान न होने से समाज में अविद्या और अज्ञान का प्रसार होता है। इससे मनुष्य भ्रमों का शिकार होता है और दुष्ट व चतुर लोग उसका भावनात्मक शोषण सहित आर्थिक व अन्य प्रकार का व अनेक प्रकार से शोषण करते हैं। उनके द्वारा ईश्वर और आत्मा विषयक अनेक भ्रम फैलाये जाते हैं। अवतारवाद, मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, फलित-ज्योतिष, सामाजिक असमानता, जन्मना जाति प्रथा, छुआछूत, असमान शिक्षा, बाल विवाह, विधवाओं पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध व पुनर्विवाह में अड़चनें आदि कुछ अल्पज्ञानी व अज्ञानियों की देश व समाज के लिए हानिकारक देनें हैं। इन सबका धर्म विषयों में परम प्रमाण ईश्रीय ज्ञान वेद से विरोध है जिसे ऋषिकृत वेदभाष्य का अध्ययन करके ही जाना जा सकता है। । यह सभी बातें युक्ति व तर्क से भी सिद्ध नहीं होती हैं। सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द ने इनकी असलियत को बताया है। इसी कारण से समाज में अविद्या व अन्धविश्वास फैले हैं व बढ़ रहे हैं। यदि मनुष्य को ईश्वर व जीवात्मा के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो तो वह इन भ्रमों में नहीं फंसता। ईश्वर व जीवात्मा का यथार्थ स्वरूप जानकर ही देश व समाज यथार्थ रूप में उन्नति करते हैं। इस आध्यात्मिक ज्ञान से ही मनुष्य अपने कर्तव्यों को जानकर अपने जीवन के लक्ष्य **“दुःखों की निवृत्ति वा मुक्ति”** की प्राप्ति की ओर बढ़ते हुए अपने जीवन में सुख, शान्ति व समृद्धि को प्राप्त होते हैं।

महाभारत काल से पूर्व देश में अज्ञान व अंधविश्वासों की ऐसी स्थिति नहीं थी जैसी कि वर्तमान में है। सृष्टि के आरम्भ से महाभारतकाल तक देश में ऋषि मुनियों द्वारा निर्धारित वैदिक शिक्षा का प्रचार था जिसमें अन्य सभी विषयों के साथ ईश्वर, जीव व सृष्टि का यथार्थ ज्ञान कराया जाता था। लगभग 150 वर्ष पूर्व देश अज्ञान व अविद्या के तिमिर से पूर्णरूपेण आच्छादित हो गया था जिसके परिणामों में परतन्त्रता व ईश्वर की मिथ्या पूजा सहित समाज के सभी क्षेत्रों में मिथ्याचार का बोलबाला था। ऐसे समय में ही सन् 1863 में ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने अपने अपूर्व विद्या व योग बल से अज्ञान व अविद्या को हटाया और मनुष्य को उसके सच्चे आत्मस्वरूप सहित ईश्वर, सृष्टि, उसके कर्तव्यों व लक्ष्यों से परिचित कराया। उनका अपना जीवन इन सभी का आदर्श रूप था। अविद्या, अज्ञान, अंधविश्वास व सामाजिक कुरीतियों से वह सर्वथा मुक्त थे। सच्चे वेदभक्त और ईश्वरोपासक सहित सच्चे देशभक्त, आजादी के प्रेरक व समाज सुधारक थे और देश को सुख व समृद्धि की ओर लेकर चले थे। सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिक, वेदभाष्य, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि उनके ग्रन्थ देश को उन्नति की चरम अवस्था में ले जाने वाले सत्य विद्या के ग्रन्थ व मनुष्य व देशोन्नति के रोडमैप थे व हैं।

आज की शिक्षा मनुष्य को आत्मज्ञान प्रदान नहीं करती। कठोपनिषद 3/5 श्लोक **‘‘यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा। तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दृष्टाश्वा इव सारथेः।।”** में कहा है कि जो मनुष्य आत्म-ज्ञान-विज्ञान से हीन होता है वह विषयों में फंसा रहता है। आत्मज्ञान न होने से उसका मन चित्त की वृत्तियों को नियंत्रण में नहीं रख पाता। उसकी सभी इन्द्रियां अनियंत्रित रहती हैं। जिस प्रकार से किसी रथ में लगे अनियंत्रित घोड़ों से लक्ष्य पर नहीं पहुंचा जा सकता वही दशा आत्मज्ञान से रहित मनुष्य की होती है। वह अपने लक्ष्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति से वंचित रहता है। अतः जीवन में अन्य सभी प्रकार के लौकिक ज्ञान के समान ईश्वर व जीवात्मा विषयक आध्यात्मिक ज्ञान की भी आवश्यकता मनुष्य को है जिसका मूल वेद में है और उसी का प्रकाश हमारे ऋषियों ने उपनिषदों व दर्शनों में किया है। कठोपनिषद बताती है कि आत्मज्ञान से हीन मनुष्य का मन और इन्द्रियां उसके वश में नहीं रहती और, अज्ञानतावश सन्मार्ग में न चलने के कारण वह अपने वास्तविक लक्ष्य पर नहीं पहुंच पाती हैं। इस स्थिति का सुधार आत्म ज्ञान प्राप्त करके ही किया जा सकता है। आत्मज्ञान क्या है? इसका विचार करने पर ज्ञात होता है हम न केवल जड़ शरीर हैं और न केवल चेतन जीवात्मा। हम चेतन पदार्थ जीवात्मा और जड़ पदार्थों से निर्मित शरीर के संयुक्त रूप हैं। जीवात्मा अनादि, अविनाशी, शाश्वत्, अजर, अमर, नित्य, एकदेशी, ससीम व अल्पज्ञ है जबकि हमारा शरीर अनित्य, मरणधर्मा व नाशवान है। शरीर जन्मा है अतः कुछ काल बाद इसकी मृत्यु होना अवश्यम्भावी है। अतः हमारा कर्तव्य बनता है कि हम शरीर को रोगों से मुक्त रखने, इसे स्वस्थ व बलवान रखने के उपाय करें और अपने शरीर से अधिक से अधिक काम लें।

यह शरीर हमें कर्म करने के लिए मिला है। हम जो कर्म करते हैं वह शुभ व अशुभ दो प्रकार के होते हैं। अशुभ कर्मों का परिणाम दुःख और शुभ कर्मों का परिणाम सुख होता है। वेदों में अशुभ वा पाप कर्म करने का निषेध व शुभ अर्थात् पुण्य कर्म करने की प्रेरणा है। शुभ कर्म व कर्तव्यों में ईश्वर व जीवात्मा का ज्ञान प्राप्त कर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। वायु, जल व पर्यावरण की शुद्धि हेतु देवयज्ञ अग्निहोत्र करना दूसरा आवश्यक कर्तव्य है। इसी प्रकार पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ तथा बलिवैश्वदेवयज्ञ करना, यह सब मिलकर पंचमहायज्ञ हैं जिन्हें सभी गृहस्थियों को करना होता है। ईश्वरोपासना का एक अंग स्वाध्याय भी है। ईश्वरोपासना में ईश्वर व जीवात्मा के चिन्तन सहित इन विषयों का स्वाध्याय भी किया जाता है जिससे मनुष्य आत्मज्ञान से हीन न होकर आत्मज्ञान से संयुक्त हो जाता है और इस संसार, ईश्वर व जीवात्मा को यथार्थ रूप में जान लेता है। इससे उसकी अविद्या दूर होती है। ऐसा व्यक्ति ही पांच ज्ञान इन्द्रियां के विषयों से अपने आप को दूर रखकर, उनसे विमुख होकर वा उनके अनुचित प्रभाव से बचते हुए, अपने जीवन को परमार्थ में लगा सकता है। इन्द्रियों के किसी एक व सभी विषयों में फंसे मनुष्य से ठीक विपरीत यह स्थिति होती है। आत्मज्ञान हो जाने पर मनुष्य का मन चित्त की वृत्तियों अर्थात् इन्द्रियों के विषयों से मन को रोक उन पर नियंत्रण कर लेता है। उसकी सभी इन्द्रियां पूरी तरह से उसके वश में हो जाती हैं। यही मनुष्य जीवन की सफलता कही जा सकती है। ऋषि दयानन्द ऐसे ही मनुष्य हुए हैं। इन गुणों से युक्त अन्य कोई विद्वान व नेता इतिहास में हमें दिखाई नहीं देता। यदि हुए हैं तो वह राम, कृष्ण, चाणक्य जी आदि ही प्रतीत होते हैं।

उपनिषद का सन्देश है कि हम अपनी आत्मा व ईश्वर को भी यथार्थ रूप में जाने। इसी से हमारा मन व इन्द्रियां वश में होंगी, हम दुष्कर्मों से बचेंगे, ईश्वर में हमारा मन लगेगा, आत्मा के सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यस्न और दुःख दूर होंगे। मनुष्य जीवन की यह अवस्था ही सफल अवस्था कही जहा सकती है। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**